



महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

मानविकी एवं भाषासंकाय संस्कृत विभाग

एम. ए. द्वितीय सत्र

विषय – ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत)

Code – SNKT2003

उपविषय – भाक्तवाद-खण्डन

विश्वजित वर्मन

सहायक-आचार्य, संस्कृत विभाग

biswajitbarman@mgcub.ac.in

भाक्तवाद का खण्डन

ध्वनिविरोधी आचार्यों के तीन विकल्प है। अभाववाद, भाक्तवाद एवं अनिर्वचनीयवाद। इनमें भाक्तवाद अन्यतम है। वे ध्वनि को स्वतन्त्ररूप से स्वीकार न करके लक्षणा में अन्तर्भुक्त कहते हैं। जिनका उल्लेख ग्रन्थकार ने प्रथम कारिका में 'भाक्तमाहुस्तमन्ये' से किया है।

□ इस 'अन्ये' पद से अभिधावृत्तिमातृका के कर्ता मुकुलभट्ट, भट्टोद्भट आदि प्रमुख आचार्यों का बोध होता है।



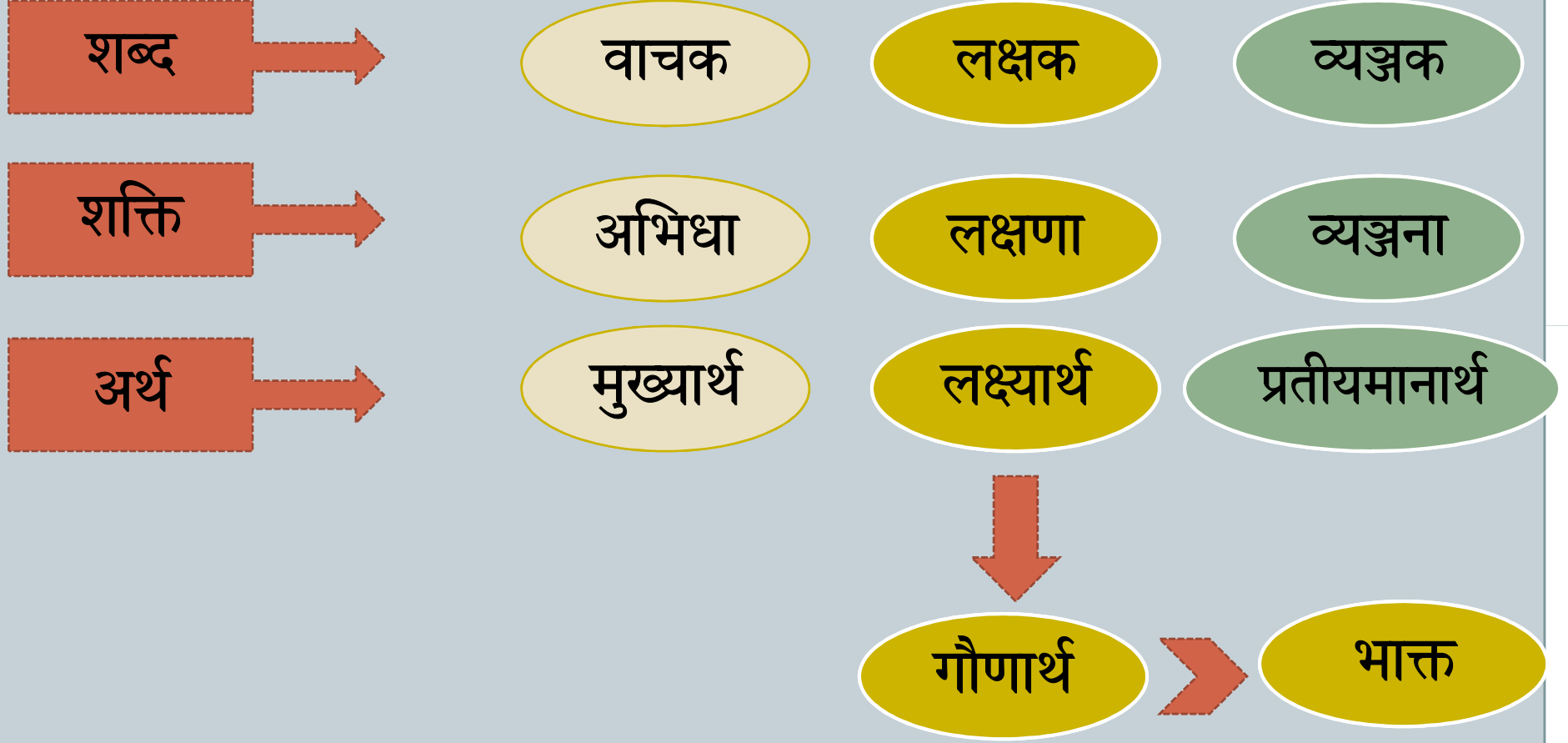
भज्यन्ते सेव्यते पदार्थेन प्रसिद्धतयोत्प्रेक्षते इति भक्तिर्नाम धर्मः,
अभिधेयेन सामीप्यादि ।

लाक्षणिक अर्थ में ही ध्वनि का अन्तर्भाव होता है, ये
भाक्तवाद का कहना है ।

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि का लक्षणा में
अन्तर्भाव नहीं हो सकता, इसलिए प्रधान रूप से ध्वनि का दो भेद
प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- 1. अविवक्षितवाच्यध्वनि

2. विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि ।

उसमें अविवक्षितवाच्यध्वनि लक्षणामूला तथा
विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि अभिधामूला है ।



लक्षणा

शुद्धा

गौणी

ध्वनिविरोधी लक्षणावादी आचार्यों के अनुसार ध्वनि और लक्षणा एक ही है, वह गौणीरूप लक्षणा में अन्तर्भुक्त होता है। लक्षणा के विषय में सामीप्य, सारूप्य, समवाय आदि पञ्च सम्बन्ध निर्धारित है, किन्तु उसमें किसी भी सम्बन्ध में ध्वनि और भक्ति में साम्यता नहीं दिखता है।

पूर्वपक्षियों ने ध्वनि और भक्ति में साम्य तीन प्रकार से किया है

पर्याय दृष्टि से

लक्षण दृष्टि से

उपलक्षण दृष्टि से

स्वरूप भेद

□ भक्ति द्वारा ध्वनि को लक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि भक्ति को ध्वनि का लक्षण मानने में अतिव्यप्ति तथा अव्याप्ति दोष होगा। अतः आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं-

भक्त्या विभर्ति नैकत्वं रूपभेदादयं ध्वनि ।
अतिव्याप्तेरथाव्यप्तेर्न चासौ लक्ष्यते तथा ॥

□ अतिव्यप्ति- अलक्ष्ये लक्षणगमनम् । यथा- गोः शृङ्गित्वं लक्षणं लक्ष्यगोवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यमहिष्यादिवृत्ति ।

□ केवल लक्ष्यमात्र में रहनेवाला धर्म ही निर्दुष्ट लक्षणा होता है, किन्तु लक्षणा तो ध्वनि से भिन्न विषय में भी देखी जाती है, इसलिए अलक्ष्य में भी रहने के कारण ध्वनि लक्षण के तात्पर्य में अतिव्यप्ति दोष स्पष्ट प्रतीत होता है ।

ध्वनि और भक्ति में पार्थक्य प्रदर्शिन करने के लिए पाँच उदाहरण प्रस्तुत हैं--

पहला उदाहरण-

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपबलनैः

कृशाङ्गन्याः सन्तापं वदति विशिनीपत्रशयनम् ॥

□ अर्थ- कमलिनी पत्र से बनी हुई सागरिका की यह शय्या पीन स्तन तथा जांघों के सम्पर्क से दोनों ओर मुरझा गयी है, दोनों स्तनों के बीच के भाग का स्पर्श न होने से बीच का भाग हरा है, शिथिल भुजलताओं के सञ्चालन करने के कारण यह शय्या अस्त-व्यस्त हो गयी है, इस तरह यह शय्या उस कृशाङ्गी के विरह सन्ताप को कह रही है ।



- इस श्लोक में 'वदति' इस पद को लाक्षणिक सामझा जाता है, क्योंकि अचेतन शय्या का कथन सम्भव नहीं।
- ध्वनि वहाँ होता है, जहाँ वाचक शब्द न हो। किन्तु, इस श्लोक में वाचक शब्द के कारण व्यङ्ग्य की कुछ झलक मात्र ही प्रतीत होती है, उसकी रमणीयता नहीं।
- अतः यहाँ ध्वनि के अभाव में भी लाक्षणिक प्रयोग होने के कारण अतिव्यप्ति है। लक्ष्य के अभाव में भी जहाँ लक्षण का सद्भाव पाया जाता है, वहाँ अतिव्याप्ति होती है। अतिव्यप्ति दोष होने के कारण भक्ति को ध्वनि का लक्षण नहीं माना जा सकता।

दूसरा उदाहरण

शतकृत्वोऽवरुध्वते सहस्रकृत्वश्चुम्ब्यते ।

विरम्य पुनारमते प्रियोजनो नास्ति पुनरुक्तम् ॥

□ अर्थ- उसी तरह प्रियजन का सैकड़ों बार चुम्बन करते हैं, हजारों बार आलिङ्गन करते हैं, रुक रुककर बार-बार रमण करते हैं, फिर भी पुनरुक्त नहीं है, अर्थात् उत्तरोत्तर रसास्वाद ही होता है ।

□ इस श्लोक में 'पुनरुक्त' शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया गया है, क्योंकि यहां शब्द से ही पुनरुक्त रूप अर्थ प्रतीत होने पर पुनः पुनरुक्त शब्द व्यर्थ है । पुनरुक्त शब्द से मुख्यार्थ बाधित है, अतएव उसका लाक्षणिक अर्थ अनुपादेयता है ।

□ इस पद्य में भी व्यङ्ग्य की प्रधानता न होने के कारण ध्वनि नहीं है, किन्तु लक्षणा का प्रयोग है । अतः ध्वनि का लक्षण भक्ति को नहीं माना जा सकता, क्योंकि यहाँ भी भक्ति की अतिव्यप्ति है ।

तीसरा उदाहरण-



कुपिताः प्रसन्ना अवरुदितवदना विहसन्त्यः ।

यथा गृहीतास्तथा हृदयं हरन्ति स्वैरिणयो महिला ॥

□ अर्थात्- स्वैरिणी नायिका कुपित हो या प्रसन्न, रोती जैसी हो या हँसती हुई हो, किसी भी रूप में देखी जाने पर युवकजन के मन को अपने हाव-भाव से वश में कर लेती है ।

□ इस श्लोक में 'गृहिताः' एवं 'हरन्ति' दो लाक्षणिक प्रयोग किया गया है । गृहीता के द्वारा उपादेयता तथा हरन्ति के द्वारा परतन्त्रता रूप अर्थ लक्षित होता है ।

□ यहाँ ध्वनि का अवसर न होने पर भी लाक्षणिक प्रयोग के कारण भक्ति की अतिव्याप्ति का उदाहरण है ।

चौथा उदाहरण-

भार्यायाः प्रहारो नवलतया दत्तः प्रियै स्तनपृष्ठे ।
मृदुकोऽपि दुःसह इव जातो हृदये सपत्नीनाम् ॥

□ अर्थ- प्रियतम ने अपनी कनिष्ठ भार्या के स्तन पर नवीन लता से हल्का सा प्रहार किया, किन्तु वह प्रहार मृदु होकर भी सौतों के दिल में दुःसह होकर लगा ।

□ इस श्लोक में 'दत्तः' पद लाक्षणिक प्रयोग है, यहाँ ध्वनि नहीं, है किन्तु लाक्षणिक प्रयोग के कारण अतिव्यप्ति है ।

□ इसमें दत्तः पद डुदाञ् दाने धातु से क्त-प्रत्यय होकर व्युत्पन्न हुआ । जिसका अर्थ दान करना । स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनं दानम् अर्थात् स्व-स्वत्व को त्याग करके परस्वत्व को स्थापित करना, किन्तु, इसमें दानरूप अर्थ न होकर फलवत्त्व रूप अर्थ की प्रतीति होती है । अतः यहाँ भक्ति है, ध्वनि नहीं ।

पांचवा उदाहरण-

परार्थे यः पीडामनुभवति भङ्गेऽपि मधुरो
यदीयः सर्वेषामिह खलु विकारोऽप्यभिमतः ।
न सम्प्राप्तो वृद्धिं यदि स भृषमक्षेत्रपतितः
किमिक्षोर्दोषोऽसौ न पुनरगुणया मरुभूवः ॥

□ अर्थात् जो दूसरों के लिए पीड़ा का अनुभव करता है, जो टूट जाने पर भी मधुर ही बना रहता है, जिसका विकार भी सबके लिए अनुकूल रहता है, किन्तु बुरे क्षेत्र में पड़ने के कारण वह यदि नहीं बढ़ सका, तो इसमें क्या ईक्षु का ही दोष है ? क्या ये गुणहीन मरुभूमि का दोष नहीं है ?



□ ऐसे ही महापुरुष पक्ष में, महान पुरुष परोपकारार्थ कष्ट सहन करते हैं, पराभव में भी मधुर बने रहते हैं, जिनका हानि भी लोगों को अच्छा लगता है, वे यदि कुसंगति से उन्नति नहीं कर पाते हैं तो क्या वह महापुरुष का दोष है ? या कु-संगति का ?



- इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है ।
- इस श्लोक में अनुभवति पद का प्रयोग महापुरुष पक्ष में ठीक है किन्तु, ईक्षु पक्ष में अचेतन ईक्षु का अनुभव सामर्थ्य न होने के कारण मुख्यार्थ का बाध हो जाता है ।
- ईक्षुपक्षे अनुभवति पद औपचारिक प्रयोग है । लक्षणावृत्ति के द्वारा बाधित होकर पीड्यमान अर्थ को प्रकाशित करता है ।
- अतः यहाँ भी भक्ति है, ध्वनि नहीं ।
- यह श्लोक भी अतिव्याप्ति का उदाहरण है ।



□ इस प्रकार इन पांच उदाहरणों से आचार्य आनन्दवर्धन ने यह सिद्ध किया कि ध्वनि में भक्ति का अन्तर्भाव सम्भव है, किन्तु भक्ति सम्भव होने पर भी ध्वनि की सत्ता नहीं होती है। अतः ध्वनि को भाक्त कहना अतिव्याप्ति दोष है। इसलिए आनन्दवर्धन कहते हैं-

उक्त्यान्तरेणाशक्यं यत्तच्चारुत्वं प्रकाशयन् ।
शब्दो व्यञ्जकतां विभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयी भवेत् ॥



□ अर्थात् जिसका प्रकाशन दूसरी उक्ति के द्वारा सम्भव नहीं है तथा उस चारुत्व को प्रकाशित करने वाला एवं व्यञ्जकता को धारण करने वाला शब्द ध्वनि शब्द से कहा जाता है, किन्तु जहाँ दूसरी उक्ति से जिसका प्रकाशन सम्भव नहीं तथा चारुता को प्रकाशित करनेवाला कोई शब्द नहीं वहाँ ध्वनि नहीं है ।

□ ध्वनि को जो लोग उपलक्षण कहते हैं, वह भी समीचीन नहीं है, क्योंकि 'स्व बोधकत्वे सती स्वेतरबोधकत्वमुपलक्षणम्' । उपलक्षण को आश्रय करके ही सभी अलङ्कार एक ही लक्षण में बाधित हो सकता था किन्तु सभी अलङ्कारों का अलग-अलग लक्षण क्यों ? अतः उपलक्षण से भी ध्वनि लक्षणा के अन्तर्गत है ऐसा नहीं कह सकते हैं ।



अव्याप्ति दोष

लक्ष्य में लक्षण का असंघटन होने से अव्याप्ति दोष होता है। इस प्रकार से यदि भक्ति को ध्वनि का लक्षण स्वीकार किया जाए तो अव्याप्ति दोष होता है। यदि ऐसा कहा जाय कि श्वेत वर्ण गाय का लक्षण है, तो अव्याप्ति दोष होगा, क्योंकि पीत, कृष्ण आदि वर्ण की गाय भी देखी जाती है। ठीक उसी तरह भक्ति को यदि ध्वनि का लक्षण कहा जाता है, तो अव्याप्ति दोष होगा, क्योंकि विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि में भक्ति का अभाव होता है।



प्रयोजनवती लक्षणा में लक्षणा उत्पत्ति का कारण है प्रयोजन (व्यङ्ग्य) ।
यदि प्रयोजन न होता, तो लक्षणा भी नहीं होती ।
अतः प्रयोजनवती लक्षणा को ध्वनिकाव्य का लक्षण स्वीकार किया
जाय तो अव्यप्ति दोष होता क्योंकि प्रयोजनवती लक्षणा के भिन्नस्थल
पर भी ध्वनि होता है ।

इसी प्रकार आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत
में भाक्तवाद का खण्डन किया है ।



धन्यवाद